मैंने आसमान को सलीब धरती को कब्र बनते नहीं देखा

युवा कवि सौम्य मालवीय की कविता 'फिलिस्तीनी बच्चों के नाम'

बचपन के कुछ अपने ही दर्द होते हैं
खास इसी उम्र से जुड़े हुए
सीधे, सरल, मारक, तीखे,
सच्चे, चमकदार, खालिस दर्द
ना कोई चिकित्सीय पेंचीदगी,
ना कोई जटिलता
कारण भी ज्ञात होता है और निवारण भी

शरीर के किसी कोने से दर्द उठता है
और कुछ देर में पूरा बदन दर्द का वाद्य यंत्र होता है
पसीने में नहाया, थरथराता हुआ
दो भागों में बंट जाता है शरीर
एक जहाँ तक दर्द की तरंगें पहुंचती हैं
और दूसरा उसके परे
हम दर्द से बोझिल, गर्म और कांपते हिस्से में होते हैं
हम दर्द रहित, हल्के और प्रफुल्लित हिस्से में होना चाहते हैं
ये बचपन के तय, अपेक्षित, स्मरणीय और अनिवार्य दर्द होते हैं
इनसे बचना संभव नहीं
इनके बिना बचपन नहीं

उम्र बढ़ने के साथ गहराते हैं रोग भी
कम तौर पड़ता है बदन भी
पर वो शरीर तोड़ने वाली बात नहीं होती
और हर दर्द अंततः दिमागी होता है
हम दर्द की नहीं दर्द के वहम की दवा लेते हैं
और कभी ठीक नहीं होते
बचपन के उन दर्दों में सबसे भयावह होता है
कान का दर्द

दिन भर
शोर-शराबा
सही-गलत
अच्छा-बुरा
गीत-संगीत
चुटकुले, ठहाके
उमेठियां, तमाचे
और जाने क्या-क्या सहने, सुनने, समझने के बाद
एक उधम भरे चमकीले शरारती दिन के उपरांत
शाम के उतरने के साथ ही
कोई एक कान अपनी ही धुन में चिलकने लगता है
कनपटी गर्म होने लगती है
त्वचा नर्म होने लगती है
शरीर का गुरुत्व केंद्र कान वाले हिस्से में खिसक जाता है
दांये या बांये
हम पहले दो हिस्सों में बंटते हैं

और फिर कुछ देर में समूचे एक कान हो जाते हैं
लाल दर्द से वाइब्रेट करता हुआ कान
हमें अपने कान से कोफ्त होती है
दूसरा कान प्यारा, मासूम, दोस्त सा जान पड़ता है
काश वही दोनों ओर होता!
मन होता है अपने बाकी कान को
काट के फ़ेंक देने का!

मुझे याद है
दर्द बढ़ने के साथ ही मैं अपना बिस्तर छो? कर
अम्मा-पापा के बीच जाकर लेट जाता था
वे सौम्यता से, निश्चिंतता से,
बिना हड़बड़ाए,
मेरे दर्द को पहचानते हुए
मेरी तकलीफ को मानते हुए
मुझे आश्वस्त करते थे, दुलारते थे, पुचकारते थे
मेरे दर्द को दुत्कारते थे
एक अचूक पेनकिलर
कुछ स्नेहिल थपकियाँ
और दर्द जैसे आया था वैसे ही चला जाता था

मैं हल्की हरारत में, पसीने में तरबतर
नींद के आगोश में समा जाता था
रात भर दर्द के बादल के बरसने के बाद
फूल सी हल्की होती थी सुबह
फिर एक अच्छा क्लीनिक
एक मिलनसार डॉक्टर
हरे-नीले-पीले टैबलेट्स
और अगली बार खूंट जमने तक
या तेज जुकाम होने तक
कान का दर्द मुल्तवी हो जाता था

मेरे बचपन की सबसे बड़ी तकलीफ
यही कान का दर्द रहा
इन दर्द से भरी रातों के अलावा
बचपन में मैंने अपनी नींद कभी नहीं खोयी
जानी नहीं इससे बड़ी यातना कभी

मेरा बचपन किसी जंग के साये में नहीं बीता
किसी प्राकृतिक आपदा में मैं कभी फँसा नहीं
भूख, गरीबी, लाचारी, बेबसी इन सबसे मैं अनजान था
शायद इसीलिए महज़ कान के दर्द से परेशान था!

मैं गाढ़ा में रह रहे
बच्चों के दर्द को क्या समझूँ
मैंने जलते हुए घर नहीं देखे
मैंने मलबे के नीचे दफन होते अपने परिजनों को नहीं देखा
टैंक, मिसाइल, रॉकेट ये मैंने टीवी पर देखे हैं
अपने सामने नहीं
सैनिकों को मार्च करते मैंने नहीं देखा
मैं धुंए के गुबार में कभी गुम नहीं हुआ
मैं डर के बुखार में कभी तपा नहीं
मैंने अपने स्कूल को गिरते
घर को उजड़ते नहीं देखा
मैंने बमवर्षकों से भरा आसमान नहीं देखा
मैंने आसमान को सलीब
धरती को कब्र बनते नहीं देखा

मैंने बहता हुआ खून बिखरे हुए मांस के लोथड़े नहीं देखे
मैं बेवतन पैदा नहीं हुआ
मैं अर्स-ऐ-बेजमीन पर जन्मा नहीं
मेरे गालों पर हमेशा बोसों की लज्जत होती थी
सर पर शफकत भरी छाया होती थी
मैं उन तकलीफों को कभी महसूस नहीं कर सकता
बयान नहीं कर सकता
मुझे उन मुसीबतों का इल्म नहीं
मुझ पर ऐसी आफतें कभी टूटी नहीं
मैं उन जख्मों से वाकिफ नहीं
मैंने कान के दर्द से ज्यादा कोई दर्द कभी जाना नहीं!
मुझे कभी-कभी अपने सुखद,आरामदायक,और महरूर बचपन से घिन आती है!

हालाँकि, मैं कान के दर्द से भली-भाँति परिचित हूँ
मैं उसकी आहट मात्र से सिहर उठता हूँ
वह लाइलाज हो जायेगा इस कल्पना मात्र से
मेरी रीढ़ ठंडी हो जाती है
और जब मैं ये सोचता हूँ
कि हर रात फिलिस्तीन की धरती पर
दर्दों की, जमों की,
बेचैन आमद-ओ-रफ्त के बीच एक दर्द कान का भी दौड़ता होगा
तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं!
बच्चे छोटी और संकरी झोपडियों में
दर्द से हलाकान बिलखते होंगे
सड़े हुए लाल कानों से मवाद रिसता होगा
सुन्न पड़ता होगा मस्तिष्क
बर्गे गुल से होंठ नीले पड़ते होंगे

जिस्म तेज बुखार में तपते होंगे
सारे जहाँ का दर्द
पूरी बिंदु समग्रता के साथ
एक कान में उतरता होगा
पर उनके माता-पिता के चेहरों पर
वह निश्चलता, निश्चिंतता, सौम्यता नहीं होती होगी
जो मेरे माता-पिता के चेहरों पर होती थी
मुझे आश्वस्त करती
मेरी तकलीफ हरती
मुझमें सुरक्षाबोध जगाती
उनके चेहरों पर एक असमर्थता, एक शून्य, एक शिकस्त
होती होगी
कोरी आँखों में उपेक्षा नाचती होगी
उनसे यह कहती हुई कि
इस दर्द को इतनी तवज्जो मत दो
इसे बिसराओ
या लाओ कान ही काट कर फेंक दें!
न कोई डॉक्टर
न कोई क्लीनिक
बेरहम रात के बाद बेशरम सुबह
डॉक्टरी खुद से बाहर जाता दर्द
बम की गर्जना में गुम होती चीखें....

खामोश होती चीखें
फिलिस्तीन एक बुखार से कांपता जिस्म
गाढ़ा एक दर्द से चिलकता कान
बच्चों से कहते उनके माँ-बाप
कान के दर्द को भूलो
इन बचकानी शिकायतों से बाहर आओ
जब्र ने तुम्हारे लिए ज्यादा नए और नीले
दर्द ईजाद कर लिए हैं!

खैर छोड़िये...

कहाँ आ गए
मैं तो कह रहा था
कि बचपन के कुछ अपने ही दर्द होते हैं
खास उसी उम्र से जुड़े हुए
सीधे, सरल, मारक, तीखे, सच्चे, चमकदार,
खालिस दर्द
उन्हें तो जानते ही होंगे न
आप भी!

लोकल स्टेशन पर रात के 11.30 बजे हैं...

पैंट शर्ट में एक ठीक ठाक आदमी, पत्नी और दो बच्चों के साथ खड़ा है...आने जाने वालों से एक्सक्यूज़ मी कह रहा है...कमीज बाहर है पसीने से भीगी, छोटा बच्चा रो रहा है, साथ में एक लड़की है कोई 10 साल की...पत्नी के चेहरे पर भयंकर निराशा साफ़ दिख रही है, लेकिन कोई उस पर गौर नहीं करता...मैं भी नहीं! एक्सक्यूज़ मी सुन कर रुकता हूं कि शायद रेल के बारे में पूछ रहा है...मराठी में आगे की बात कहता है, 'सर, बच्चों को वड़ा पाव खिलाना है...' कह कर रुक जाता है और मैं उसे अनदेखा कर बेरुखी से आगे निकल जाता हूं... दो कदम बढ़ा कर ठिठकता हूं और रुक जाता हूं...

मेरे कान में नाना पाटेकर का इंटरव्यू गूँज रहा है अब...'अगर मुम्बई में सड़क पर अचानक कोई आपसे मदद मांगे तो उसे भिखारी न समझे, वह किसान हो सकता है...'

मुड़ता हूं तो सबसे पहले उसकी बच्ची की ओर निगाह जाती है, 10 साल की बच्ची पिता का हाथ थामे है और उसकी बेबसी देख रही है, पत्नी को देखता हूं जो गोद में बच्चा लिए शर्मिंदगी और निराश में सर झुकाये है...आदमी को देखता हूं जो हर आने जाने वाले को रोकने की कोशिश कर रहा है...

मैं लौटता हूं और उस से उसका नाम पूछता हूं, वो ड्राइविंग लाइसेंस दिखाता है...विलास...

अगला सवाल,

कहां के रहने वाले हैं?

जालना...

यहां कैसे आये हैं?

काम की तलाश में, कोई गाड़ी चलाने को मिल जाए...

खेती नहीं है?

है सर...बहुत है पेट पालने को लेकिन बारिश...

अब पत्नी की आँख में आंसू हैं, बेटी मुझे गुस्से में घूर रही है..मैं जेब में से बटुआ निकालता हूं, 10 का नोट निकालता हूं और फिर खुद से शर्मिंदा हो जाता हूं...10 रुपये? वो भी जब मेरे अलावा उतनी देर में कोई नहीं रुका?

100 का नोट निकाल कर उसके हाथ में रख देता हूं... बच्ची की नज़रों का सामना नहीं कर सकता, सो चल देता हूं.. विलास पीछे से बार-बार शुक्रिया कह रहा है...मैं प्लेटफॉर्म पर आ जाता हूं

बोरीवली की रेल आने में 10 मिनट हैं, अचानक वो परिवार आ कर ज़मीन पर बैठ जाता है, पसीना चू रहा है...माँ, खाने का डब्बा बच्ची के आगे बढ़ा देती है...अचानक मुझे देख विलास सकपका जाता है, 2 सेकंड के लिए मुझे भी ठगे जाने का अहसास होता है..लेकिन अचानक लगता है कि वह करे भी तो क्या? आज रात का इंतज़ाम हुआ है लेकिन कल? और क्या डब्बे में खाना देख कोई उसकी मदद करेगा...

मैं उसकी ओर बढ़ता हूं और वो हाथ जोड़ कर खड़ा है...उसकी बेटी डब्बा अपने पीछे छुपा रही है और बस रोने ही वाली है...बीवी को शायद ही कुछ समझ आ रहा हो...विलास हाथ जोड़ कर माफ़ी मांगने लगा...मैं सिर्फ़ इतना कह सका कि माफ़ी मत मांगो और वो मेरे पैरों में झुकने लगा है...मैं उसकी बेटी के सामने ये होते देख और शर्मिंदा हूं... बाप, छोटी बेटी का हीरो होता है...मेरे मुंह से शब्द ही नहीं निकल पा रहे हैं...विलास बोले जा रहा है...

सर, चोर नहीं हैं...सर क्या करें...न खेती है, न काम...बच्चों का मुंह देख कर खुदकुशी भी नहीं...मैं अपने आंसू रोक नहीं पा रहा...शब्द इतने जाम हो गए कि बस उसको भींच के गले लगा लिया...आस पास 2-4 लोग इकठ्ठा हो गए हैं..मैं उनको देख रहा हूं पर महसूस सिर्फ लाखों विलासों को कर पा रहा हूं.. विलास अभी भी माफ़ी मांग रहा है और हम दोनों रो रहे हैं...हाँ अब मैं बोल सकता हूं

'तुम्हारी क्या गलती भाई...खाना दिखा दोगे तो कोई मदद नहीं करेगा..फिर बच्चों को...' बस शब्द फिर ख़त्म थे...एक वाक्य और कह सका...मैं जानता हूं तुम भिखारी नहीं हो, ठग भी नहीं हो...लोग रेल के आने की हड़बड़ी में व्यस्त हो गए थे..मैं 100 का एक और नोट उसके हाथ में थमा के बस यही कह सका...'विलास भाई 200 रुपये ही दे पाया हूं, सोच समझ कर खर्च करियेगा...' वो सिर्फ यह कह सका कि कोई काम हो तो दिलवा दीजिये...रेल आ गयी है...मैं बढ़ चला हूं... उसकी बच्ची मुझे अभी भी देख रही है और मैं अभी भी आँखें नहीं मिला पा रहा हूं...

ट्रेन स्टेशन छोड़ रही है, विलास का परिवार प्लेटफॉर्म पर अपने विस्थापन के प्रतीक बैग रखे खाना खा रहा है...विलास पीछे नल से पानी भर रहा है...मैं रोता जा रहा हूं... अनवरत...हम और कितने विलास बनाएंगे...मुझे बताइये, मैं अभी भी रेल में हूं और मेरे आंसू थम नहीं रहे हैं... 100 रुपये से कुछ नहीं होगा, इन विलासों के लिए कुछ कर पाएंगे क्या कभी हम? ये घटना सिर्फ 35 मिनट पहले की है...कुछ कीजिये सब...मैं समझ नहीं पा रहा कि और क्या करूं सिवाय इसके कि मुझे अपने माता-पिता की बहुत याद आ रही है...हो सकता है कि सुबह तक मैं ठीक हो जाऊं पर विलास कल फिर कहीं खड़ा होगा...

और हां, तमाम वैचारिक मतभेदों से अलग शुक्रिया नाना पाटेकर...

ट्रेन बीच में रुक गयी है...मैं सोच रहा हूं उनके बारे में जिनकी ज़िंदगी बीच में ठहर गयी है...

-मयंक सक्सेना

शिक्षा और संस्कृति का संगम

किसी भी राष्ट्र या समाज की उन्नति की आधारशिला वहाँ के निवासियों की सच्चरित्रता, परिश्रमशीलता और नैतिक मूल्य होते हैं। वह नैतिक मूल्य उसे संस्कारों से ही प्राप्त होते हैं। आज के युग में केवल गुणात्मक शिक्षा ही दी जा रही है जबकि बच्चों में संस्कारों का समावेश करना भी अनिवार्य हैं जिससे हम सभ्य, चरित्रवान, संस्कारवान नागरिक का निर्माण कर सकें।

हमारा उद्देश्य स्वस्थ, संपन्न एवं निर्भिक समाज का निर्माण करना है। जिसके लिए यहाँ व्यवसायिक शिक्षा के साथ-साथ नैतिक मूल्यों, दिनचर्या के नियमों, अनुशासन और स्वाध्याय जैसे विषयों पर प्रकाश डालना भी आवश्यक है । शिक्षा मानव के लिए बहुत आवश्यक है, यह वह धन

है जिसके कारण वह चारों ओर सम्मान पाता है। एक राजा की पूजा मात्र उसके देश में होती है परंतु एक विद्वान की पूजा विश्वभर में की जाती है। इसलिए कहा जाता है कि विद्याधन सबसे अनमोल होता है। शिक्षा मानव के लिए वह आभूषण है जिसके कारण वह सर्वत्र आदर का पात्र बनता है। एक शिक्षित व्यक्ति जहाँ भी जाता है, उसका सम्मान ही होता है। अतः हम बुद्धिजीवियों का यह परम कत्तर्व्य है, कि हम समाज में शिक्षा का प्रचार व प्रसार करें साथ ही नैतिक मूल्यों का पालन भी करें जिससे हमारे आने वाली पीढ़ी का उत्थान हो और समाज की उन्नति हो। शिक्षा के साथ-साथ अपनी संस्कृति के प्रति निष्ठा होना भी आवश्यक है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र की संस्कृति उस राष्ट्र को सुदृढ़ एवं सुशिक्षित बनाती है। भारतीय संस्कृति में सबको जोड़कर रखने की कला है।

भारतीय संस्कृति विश्व में एक अनूठी संस्कृति है, इसी कारण यहाँ अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया और इस धरती को पावन तथा पुण्य बनाया। इस धरती को स्वर्ग तुल्य भी बनाया परन्तु अब हालात कुछ निराशाजनक अवश्य हो गए पर असंभव नहीं। हम सब एक साथ मिलकर मानवीय संस्कृति की जड़ों को अमृत प्रदान करें तथा अपनी भावी पीढ़ी को श्रेष्ठ बनाने का प्रयास करें।

ऋषिपाल चौहान
चेयरमैन, जीवा पब्लिक स्कूल